विद्यानिवास मिश्र

संस्कृति और परम्परा

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र शर्मा

सह-सम्पादक
डॉ. रीना डोगरा

विद्यानिवास मिश्र

संस्कृति और परम्परा

संपादक

डॉ. सुरेन्द्र शर्मा

सह-संपादक

डॉ. रीना डोगरा

समकालीन प्रकाशन

नई दिल्ली-110002

सर्वाधिकार सुरक्षित

लेखक व प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस पुस्तक का कोई भी अंश, किसी भी रूप में या किसी भी प्रकार से इलेक्ट्रॉनिक, मशीनी या फ़ोटोकॉपी या रिकॉर्डिंग द्वारा प्रतिलिपित या प्रेषित नहीं किया जा सकता।

आईएसबीएन : 978-81-979115-5-2

प्रकाशक : **समकालीन प्रकाशन**
फ्लैट नं। 02, प्रथम तल, अंसारी मार्केट,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002
Email: sales.samkaleenprakashan@gmail.com
दूरभाष-7827484578

संस्करण : प्रथम संस्करण, 2024
आवरण : ग्रैफ़िकल हाउस
सर्वाधिकार : © संपादक
मूल्य : सात सौ रुपये मात्र
मुद्रक : आरना इंटरप्राइजेज, गाज़ियाबाद

Vidhyaniwas Mishra : Sanskriti Aur Parampara
Editor: Dr. Surendra Shrama
Co-Editor: Dr. Reena Dogara

Rs. 700/-

अनुक्रम

1. डॉ. विद्यानिवास मिश्र की साहित्यिक दृष्टि 13
-डॉ. सुरेन्द्र शर्मा

2. आचार्य विद्यानिवास मिश्र का भाषा-चिंतन 27
-डॉ. राजेन्द्र सिंह साहिल

3. पं. विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों में लोक संस्कृति 36
-डॉ. पुनीता जैन

4. पंडित विद्यानिवास मिश्र का भाषा वैज्ञानिक चिंतन 39
-डॉ. राजकुमार उपाध्याय 'मणि'

5. भारतीय संस्कृति के पुरोधा : पंडित विद्यानिवास मिश्र 48
-डॉ प्रवीण ठाकुर

6. पंडित विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में समसामयिकता 60
-डॉ. रीना डोगरा

7. लोक-संस्कृति के चितेरे : प्रो. विद्यानिवास मिश्र 68
-डॉ. यशोदा मेहरा

8. विद्यानिवास मिश्र जी के वैचारिक निबंधों में लोक संस्कृति की प्रतिध्वनि 76
-डॉ. किरण ग्रोवर

9. पं. विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में लोक-जीवन की अभिव्यक्ति 84
-डॉ. धनंजय कुमार

10. विद्यानिवास मिश्र और हिन्दू धर्म 89
-डॉ. पुष्पा सिंह

11. विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों में लोक तत्व 98
-डॉ. दायक राम

12. विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में अभिव्यक्त संस्कृति चेतना 103
-डॉ. मोहित मिश्रा

13. विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में भाषा शैली 109
-डॉ. जितेन्द्र कुमार

14. भारतीयता का ठोस दृष्टान्त : नदी, नारी और संस्कृति 114
-डॉ. प्रिया ए.

15. विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में लोक तत्त्व
-डॉ. प्रियंका 121

16. विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में मूल्य बोध
-डॉ. सारिका 129

17. विद्यानिवास मिश्र के साहित्य में परंपरा और आधुनिकता का संगम
-डॉ. मधुलिका बाजपेई 137

18. डॉ. विद्यानिवास मिश्र का संस्कृति के प्रति प्रेम
-डॉ. जगदीश कैंथला 141

19. ललित निबंधों में विद्यानिवास मिश्र का साहित्यिक दृष्टिकोण 147
-डॉ. कुमारी सुजाता

20. विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों में पौराणिकता और कथात्मकता 154
-डॉ. मीना कुमारी

21. विद्यानिवास मिश्र मिश्र के निबंधों में सांस्कृतिक जीवन मूल्य 158
-डॉ. सोमलता वर्मा

22. विद्यानिवास मिश्र के निबंध 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' में जीवन मूल्य 164
-डॉ. आशा कौंडल

23. विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों में लोकगीत, लोक कथा तथा लोक संस्कृति का सौन्दर्य 173
-डॉ. कृपा शंकर

24. विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों में लोक-संस्कृति की महक 179
-डॉ. लतेश कुमारी

25. विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों में निहित सांस्कृतिक विरासत : आधुनिक सन्दर्भ 185
-हेमराज वैष्णव

26. लोक संस्कृति के सजक चितेरे : पंडित विद्यानिवास मिश्र 194
-डॉ. रामगोपाल कुशवाहा

27. विद्यानिवास मिश्र के साहित्य में संस्कृति एवं परम्परा 203
-डॉ. सुरेन्द्र शर्मा

विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में अभिव्यक्त संस्कृति चेतना

-डॉ. मोहित मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
स्कूल ऑफ एजुकेशन एंड ह्यूमैनिटीज
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

पं. विद्यानिवास मिश्र का निबन्ध साहित्य संस्कृति की उस वैभवशाली एवं गरिमामयी पीठिका पर प्रतिष्ठित है, जो विशुद्ध रूप से भारतीय हैं। भारतीय मूल्यों को अपने लेखन में स्थान प्रदान करने का कार्य उन्होंने किया। वे वेद, पुराण, धर्म, दर्शन, इतिहास, कला पुरातत्व के चिन्तक ज्ञाता एवं भारतीय संस्कृति के अन्यतम व्याख्याता हैं। मिश्र जी के ललित निबन्धों में जीवन दर्शन, संस्कृति, परम्परा और प्रकृति का अनुपम सौन्दर्य का तालमेल मिलता है। इन सब बातों के बीच बसन्त ऋतु वर्णन उनके ललित निबन्धों को और रसमय बना देती है। ललित निबन्धों के माध्यम से साहित्य को अपना योगदान देने वाले पं. विद्यानिवास मिश्र हिन्दी की प्रतिष्ठा हेतु सदैव संघर्षरत रहे। साहित्य के द्वारा सामाजिक चेतना का विस्तार उनके लेखन में देखने को मिलता है। साहित्य और संस्कृति परस्पर सम्पृक्त है। साहित्य और संस्कृति समाज के अवचौतन मन में स्थित होती है। साहित्य की यह विशेषता रही है कि वह समाज और संस्कृति का वाहक रहा है। साहित्य जीवन सापेक्ष एवं जीवनोन्मुख है, अतः उसमें संस्कृति की अभिव्यक्ति होना स्वभाविक है। समाज और संस्कृति का आदिकाल से ही मधुर सम्बन्ध रहा है। संस्कृति पूरी तरह समाज पर निर्भर होती है जिस प्रकार दूध की अनुपस्थिति में मक्खन की कल्पना निरर्थक है उसी प्रकार समाज के बिना संस्कृति की। संस्कृति शब्द संस्कार से सम्बन्धित है जिसका तात्पर्य परिस्कृत करना, शोधन करना और उत्तम बनाना होता है

इसीलिए संस्कृति को किसी भाषा की चार दिवारी में बंद नहीं किया जा सकता। "रामधारी सिंह दिनकर जी ने संस्कृति को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि जिस समाज में हम पैदा हुए अथवा जिस समाज में रहकर हम जी रहे हैं, उसकी संस्कृति हमारी संस्कृति है। यद्यपि अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं वह भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाती है और मरने के बाद हम अन्य वस्तुओं के साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपनी संतानों के लिए छोड़ जाते हैं इसलिए संस्कृति वह चीज मानी जाती है जो हमारे सारे जीवन को व्यापे हुए है, तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभव का हाथ है।"[1] डॉ. विद्यानिवास मिश्र जी संस्कृति का स्पष्ट करते हुए लिखते है कि "हम कैसे दूसरो के साथ सांमजस्य होते है, हम कैसे दूसरों के ध्यान से अपने ऊपर संयम करते हैं, कैसे हम विशाल परिवार की आत्मीयता को आचरण की भाषा देते है। यह सब संस्कृति है। संस्कृति सहज सृजनात्मक आंकाक्षा है, इसीलिए वह सह-आत्मविस्मृति भी है और सहज आत्मविस्मृति भी है।"[2]

पं. विद्यानिवास मिश्र ने भी अपने निबंधों में परिवेश और समसामतयिकता दोनों को अनदेखा नहीं किया है। उनकी उन्मुक्त जीवन शैली के कारण समाज की पूर्ण अभिव्यक्ति उनके निबंधों में परिलक्षित होती है। आज विज्ञान की चकाचौंध में जब चतुर्दिक विकास का डंका पीटा जा रहा है, ऐसे समय में भी भारतीय समाज में किसान अपनी-अपनी दीन-हीन दशा से निजात नहीं पा सकता है यह संस्कृति ही विद्यानिवास मिश्र जी के निबन्धों की प्राणतत्त्व है। उन्होनें भारतीय संस्कृति के विभिन्न रूपों पर लेखनी चलाई है। वे स्वीकार करते है कि "मैं जानता हूँ, मैं जो कुछ लिखता हूँ, उसमें मौलिकता का दावा करना ही मूखर्ता होगी। मैं अपने को माध्यम मात्र मानता हूँ, एक ऐसी प्राणवान संस्कृति का जो चक्की के दो पाटों के बीच पड़े दाने की तरह छटपटा रही है, वह दोनो के अन्तर से निकलना चाहती है, पर निकल नहीं पाती, क्योंकि दोनो पाटों के बीच एक कील ठुकी हुई है, वह कील है उसी तकनीकी वैभव की शक्ति की, जो संस्कृतियों की खरीदार हुई है।"[3] संस्कृति के निर्माण में मिश्र जी समाज के साथ ही व्यक्ति की भूमिका को भी महत्वपूर्ण मानते है। समाज के पतझड़ और वसन्त सबका वह निरन्तर अवलोकन करती रहती है। समाज की इकाई 'व्यक्ति' से गुजरते हुए वह एक समुचे समाज एवं की परिवेश की पहचान बन जाती है। इनके लेखन के द्वारा भारतीय

सनातन परंपरा का विस्तार देखने को मिलता है। जिसमें देवी देवता एवं पूजा आदि को भी प्रस्तुत किया गया है।

हिन्दू संस्कृति के मूल ग्रंथ जो सृष्टि की रचना से प्रलय तक का वर्णन है, उन्हें सांस्कृतिक दृष्टि से पुराण कहा जाता है। वेदों में जो ज्ञान की जटिलता है, पुराण में इसे सरल शब्दों में समझाया गया है। पुराणों में हिन्दू धर्म से संबंधित देवी-देवताओं को साध्य मानकर धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, कर्म-अकर्म पर आधारित आख्यान है। निर्गुण ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए सगुण साकार की आराधना का विधान है। पुराणों में मानवीय गुणों, प्रेम, दया, भक्ति, सेवा, त्याग सहनशीलता आदि जिनकी अनुपस्थिति में सभ्य समाज की कल्पना भी नही की जा सकती, का देवी-देवताओं को माध्यम बनाकर मनुष्यों को प्रेरित करने वाली अनेक कहानियां है। मिश्र जी के सांस्कृतिक निबन्धों का सूक्ष्म विश्लेषण करने से यह स्पष्ट होता है कि उनके निबन्धों को हम तीन आधारों पर विभाजित कर सकते है जिनमें मिथकीय, पारस्परिक भारतीय दर्शन और धर्म एवं दर्शन इन निबन्धों में संस्कृति के सम्बन्ध में वे सर्वथा नवीन एवं स्वतन्त्र विचारधारा को लेकर चलते है। भारतीय संस्कृति मिश्रजी के रक्त मे सदैव प्रवाह होती रही है। विभिन्न मांगलिक अनुष्ठानों एवं दैव्य पूजा पद्धति के जो कार्यक्रम यह संस्कृति अंगीकार किए हुए है, उसी में उसकी महनीयता निहित है। यह संस्कृति सदैव लोक एवं सृष्टि कल्याण की समर्थक रही है। भारतीय संस्कृति के सभी पक्षों को अपनी लेखनी का स्पष्ट देने के कारण ही मिश्र जी को भारतीय संस्कृति का पुजारी की संज्ञा दी गई है। इसके साथ ही हमारे समाज का एक वर्ग इस संस्कृति को रूढ़िगत परम्पराओं की वाहन मानकर नकारने की वकालत करता है यह वर्ग मिश्र जी को भी परम्परावादी कहने में संकोच नहीं करता। उस वर्ग के अनुसार प्राचीन परम्पराओं और संस्कारों का तिरस्कार ही आधुनिकता माना जाता है। निश्चित ही मिश्र जी द्वारा भारतीय संस्कृति की आराधना की गई है लेकिन वे रूढ़िगत परम्पराओं के समर्थन के रूप में कहीं दिखाई नहीं देते है। संस्कृति उनके लिए एक प्रकार संस्कारात्मक परिणति है। मिश्र जी संस्कृति को स्थिर नहीं मानते। समय और परिवेश के अनुसार परिवर्तन को स्वीकार करते है। उनके लिए संस्कृति अनेकान्त नहीं है, नही वह एकान्त है संस्कृति विभिन्न प्रकार के स्वाभावों के लोगो के आपस में मिलने-जुलने के विचारों के लेन देन से रचनात्मक क्रियाओं

के तनाव की एक सतत् प्रक्रिया है, जो तोड़ती जोड़ती, दबाती एक दबाव के रूप के में दिखाई पड़ती है। उसकी एकता स्थिरता मे नही पहचानी जाती गतिशालता में पहचानी जाती है। वर्तमान में भारतीय संस्कृति को एक मजहब विशेष की धरोहर करार दिया गया है। धर्म निरपेक्षता का ढोल पीटने वाले जो लोग हैं, वे इस संस्कृति को कदापि सर्वजन कल्याण की समर्थक नहीं मान सकते। जबकि मिश्र जी इसे किसी धर्म विशेष से सम्बन्ध न मानकर 'राम' के समान ही इसे भी लोकोपकारी स्वीकार करते हैं। ''यह संस्कृति किसी एक मजहब, ईश्वर की चुनी हुई किसी एक जाति, किसी एक तन्त्र (राजनीतिक या आर्थिक), से बन्धी नहीं है, उसमें अपने को भी अतिक्रमण करने की क्षमता है। भारतीय परम्परा भी रामकथा की तरह किसी एक इतिहास या भूगोल की स्मृति से आबद्ध नहीं है, यह एक व्यापक मानवीय साझेदारी है, यह बिना किसी को कही से बिछुड़ाये किसी भी प्रतिबद्धता से तोड़े एक विशाल जुड़ाव है।''[4] यह लेखन भारतीय मान्यताओं में उत्पन्न रूढ़िता को समाप्त करने का प्रयास करता है। मनुष्य के जीवन को विस्तृत प्रसार करने का अवसर देने की बात करता है। यह लेखन सामाजिक सांस्कृतिक चेतना को प्रबल और शुद्ध करता है।

समाज और संस्कृति का आदिकाल से ही मधुर संबंध रहा है। संस्कृति पूरी तरह समाज पर ही निर्भर होती है। जिस प्रकार दूध की अनुपस्थिति में मक्खन की कल्पना निरर्थक है उसी प्रकार समाज के बिना संस्कृति का। 'संस्कृति' शब्द संस्कार से सम्बन्धित है जिसका तात्पर्य परिस्कृत करना संशोधन करना और उत्तम बनाना होता है। मानवीय मूल्यों की स्थापना एवं रक्षा का कार्य संस्कृति ही करती है। समाज की ही तरह संस्कृति भी साहित्य की प्रेरणा एवं संजीवनी है। संस्कृति समाज द्वारा निर्धारित लोक व्यवहार की पद्धति है, जिसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी प्राप्त करती है। संस्कृति का महत्वपूर्ण कार्य यह है कि समाज के विकास के साथ साहित्य को भी विकसित करना है। संस्कृत के निर्माण में मिश्र जी समाज के साथ ही व्यक्ति की भूमिका को भी महत्वपूर्ण मानते है। समाज के पतझड़ और बसन्त सब का वह निरन्तर अवलोकन करती रहती है। समाज की इकाई 'व्यक्ति' से गुजरते हुए वह एक समूचे समाज एवं परिवेश की पहचान बन जाती है। भारतीय संस्कृति मिश्रजी के रक्त में सदैव प्रवाहित होती रही है विभिन्न मांगलिक अनुष्ठानों एवं दैवीय पूजा पद्धति के जो कार्यक्रम यह संस्कृति अंगीकार किये हुए है, उसी में उसकी मदनीयता

पोहित है। यह संस्कृति सदैव लोक एवं सृष्टि कल्याण की समर्थ रही है। निबन्धकार ने अपने पारिवारिक सामाजिक परिवेश से अपने धार्मिक ग्रंथों से जो तीर्थों के बारे में ज्ञान अर्जित किया उसे निबन्धों के माध्यम से सभी को बाटने के लिए अपने विवेक से तीर्थों को नये ढ़ग से व्यक्त किया। तीर्थ हिन्दू जन मानस के अंग है, जहा कही पूर्वजों ने जन्म लिया और अपने कर्म के माध्यम से जन मानस को प्रेरित किया वहीं तीर्थ बन गए। संस्कृति डॉ. मिश्र के निबन्धों का प्राण-तत्त्व है। उनका सम्पुर्ण साहित्य संस्कृतिमूलक है। यही कारण है कि उनके निबन्धों में संस्कृति-सम्बन्धी निबन्धों की संख्या सर्वाधिक है। संस्कृति के सम्बन्ध में वे सर्वथा नवीन तथा स्वतन्त्र विचारधारा को लेकर चलते हैं। उनके संस्कृति-सम्बन्धी निबन्धों का विषय-फलक विस्तृत है। देश की स्वाधीनता-पूर्व तथा पश्चात की स्थितियों का मूल्यांकन उनके कई निबन्धों में मिलता है। पाश्चात्य तथा पौर्वात्य संस्कृति की तुलना से सम्बन्धित उनके कई निबन्ध है जिनमें 'बर्फ और धूप' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। राम तथा कृष्ण चरित्रों की महानता तथा समकालिन सन्दर्भ में उनकी प्रासंगिकता भी उनके कई निबन्धों का विषय है। वे भारतीय संस्कृति की गौरवमयी परम्परा के पोषक हैं। पाश्चात्य सभ्यता से निकट के कारण लेखक के पाश्चात्य तथा पौर्वात्य संस्कृति से सम्बन्धित निबन्धों में इतनी विश्वसनीयता तथा स्वाभाविकता आ सकी है। हमारे सांस्कृतिक जीवन में आया अपकर्ष डॉ. मिश्र को व्यथित करता है- "हिन्दुस्तान का धन विलायत जा रहा था, भारतेन्दु को बड़ी व्यथा हुई थी। पर इस समय हिन्दुस्तान का सत्व विलायत चला जा रहा है।"[5] उनकी दृष्टि में संस्कृति अखण्ड तथा अविभाज्य है- "संस्कृति खण्डित नहीं होती" पं. विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों में संस्कृति का अवलोकन एवं विवेचन करने पर कतिपय तथ्य दृष्टिगत होते हैं। मिश्र जी ने अपने निबन्धों में सामाजिक और सांस्कृतिक विशेषताओं का जो चित्रण किया है उन विशेषताओं का आज भी जीवन्त रहना भारतीय संस्कृति की उदारता का प्रमाण है। मानव जीवन के तीन सौपान हैं- समाज, संस्कृति एवं साहित्य। व्यक्ति का समाज में पालन-पोषण होता है, संस्कृति क्षीर को पाकर वह संस्कारी और पुष्ट होता है तथा साहित्य उसके जीवन प्रेरणा एवं गति प्रदान करता है। भारतीय संस्कृति विश्व बन्धुत्व के आदर्श को स्वीकार करती हुई "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सनातन मूल्य को मानती थी। परन्तु अब मानवता का यह महान आदर्श उपक्षित हो रहा है। मिश्र जी के

निबन्धों में लोक संस्कृति, लोक विश्वास, एवं सामाजिक मान्यताओं का जो चित्रण हुआ है उससे सिद्ध होता है कि वे लोक जीवन से सम्पृक्त हैं। उन्होंनें लोक संस्कृति, लोक विश्वास, एवं सामाजिक मान्यताओं का जो चित्रण किया वह अन्यत्र दुर्लभ है। मिश्र जी के निबन्धों में व्यक्त विचार अतीत की धरोहर, वर्तमान के यथार्थ तथा भविष्य के अनुकरणीय आदर्श से युक्त हैं जो राष्ट्र की सामाजिक और सांस्कृति चौतना को गतिशील बनाने में उनके निबन्धों का महत्व अक्षुण्ण है। राष्ट्रीय चेतना के प्रचार को महत्व देता है जिससे मनुष्य का आपसी संबंध निर्मित होता है समकालीन परिवेश के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने संबंधों को पूर्ण निष्ठा के साथ निर्वाह करे। वर्तमान जीवन की समस्याओं को देखते हुए लेखन का आधार समकालीन विषय को बनाया गया है। इनके लेखन में प्रस्तुत घटनाओं का बहुत ही महत्वपूर्ण अंश व्यक्ति के दैनिक जीवन से जुड़ता है। आज के समय जो संदेश प्राचीन काल के लेखन में दिया गया उसको नवीन रूप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। जिसका कार्य इनके लेखन में देखने को मिलती है।

मिश्र जी के अनुसार पुराण कथाएं सामान्य जन को अपनी संस्कृति से जोड़ने तथा उसको जीवन्त बनाये रखने, जीवन को त्याग प्रेम, सहानुभूति करूणा आदि मानवीय मूल्यों को सबको एकता के सूत्र में बाधने का कार्य करते है। मिश्र जी ने पुराणों के माध्यम से पाठकों को भारतीय संस्कृति से परिचित कराकर उसकी प्रतिष्ठा को बढ़ाने तथा उसका महात्म्य स्थापित करते है। पुराणों की कथाओं तथ्यों को अपने निबन्धों में स्थान देकर मिश्र जी जन मानस के हृदय को छू लेते हैं। उनके निबन्धों में लौकिक साहित्य के तत्व होने पर भी उसमें नवीनता बनी हुई है वह आज भी बहुत प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रैती के फल (भारतीय संस्कृति) रामधारी सिंह दिनकर, पृ. सं. 125
2. नदी, नारी और संस्कृति, पृ. सं. 44
3. संचारिणी, भूमिका
4. भारतीयता की पहचान, (भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता) पृ. 75
5. वसन्त आ गया पर कोई उत्कण्ठा, पं. विद्यानिवास मिश्र , पृ. 136